विदेश में हिंदी कहानी: रूप और प्रकार्य[1]

- प्रो. गणेश बी. पवार

इतनी छोटी सी हो गयी है दुनिया एक नक्शे-भर
जब आप आराम से खाना खा रहे हैं।
तो बिलकुल पास में कोई भूख से दम तोड़ रहा है।[2]

18वीं सदी में यूरोपीय उपनिवेशवाद अपने चरम पर था। यह उपनिवेशवाद अब केवल आर्थिक न होकर इसमें वंशीय श्रेष्ठता की स्थिति को प्राप्त कर लिया था। ऐसे हालातों में प्रसिद्ध जर्मन विचारक हर्डर ने लिखा था, "भूमण्डल के हर हिस्से के लोग, जो विभिन्न हिस्सों में नष्ट हुए हैं, वे युगों से इसलिए नहीं जीते रहे हैं कि अंत में उनकी राख याद बने और उनकी भावी पीढ़ी युरोप की संस्कृति से सुखी हो। यूरोप की संस्कृति की श्रेष्ठता का विचार प्रकृति की विभूति का अपमान है।" इस तरह से देखा जाए तो एक ओर यूरोपीय उपनिवेशवाद का असीमित शोषण था तो दूसरी ओर यूरोप से ही इसका जमकर बौद्धिक विरोध भी हो रहा था।

इसके ईर्द-गिर्द सदियों से चली आ रही एक प्रक्रिया कायम थी, जिसे हम आज पलायन या दूसरे देशों में जाकर बस जाना कहते हैं। दूसरे देशों में जाकर बसना कोई राज़ी-ख़ुशी से नहीं करता है। वे कई कारणों से एक जगह से दूसरे सांस्कृतिक वातावरण में जाकर बसते हैं। यह बसना, केवल भौतिक नहीं होता, बल्कि जानेवाले या आने वाले अपनी संस्कृति, विचार, परंपराएँ आदि कई अभौतिक हिस्सों के साथ चलते-बसते हैं। कई पीढ़ियों के बाद इनमें स्थानीय संस्कृति और परंपराओं से संघर्ष व मेल की प्रक्रिया से एक ख़ास किस्म की संस्कृति का निर्माण करते हैं। इसे दोनों संस्कृतियों के नज़रिए से देखा जाता है, लेकिन पीढ़ियों के बाद भी पुरानी संस्कृति हमेशा हावी रहती है, जैसे चुंबक के नेगेटिव और पॉज़िटिव छोर होते हैं, वैसे ही पीढ़ियों बाद मूल संस्कृति के प्रति नज़रिया विकसित होता है।

[1].यहाँ उद्धृत कहानियाँ विभिन्न ऑनलाइन पोर्टल एवं पत्रिकाओं से ली गई हैं।
[2].सबूत, अरुण कमल, पृ.80

साहित्य सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का एक ख़ास तरीका है, जो उसके रूप, उद्देश्य और वस्तु तक फैला होता है। इस लेख में हम कैनेडा में बसे भारतीयों के हिंदी लेखन के ज़रिए कई सवालों के जवाबों को संक्षेप में जानने की कोशिश करेंगे, जैसे क्या उपनिवेशवादी देशों में बसे भारतीयों की संस्कृति को स्थानीय संस्कृति ने बिल्कुल ही नष्ट कर दिया है? क्या उनके साहित्य, विशेष तौर पर कहानियों में उपनिवेशवाद के नज़रिए को अभिव्यक्ति मिली है या फिर भारतीयता अब भी कायम है? इन मूल भारतीयों को स्थानीय संस्कृति के साथ किस तरह के द्वन्द्वात्मक संबंध कायम हुए हैं? क्या यह भारतीय मूल के कहानीकार भारतीय संस्कृति का इस्तेमाल तो नहीं कर रहे हैं? इसके साथ ही हम इन कहानियों की समकालीन हिंदी कहानी की विशेषताओं के आलोक में भी पड़ताल करने की कोशिश करेंगे।

सबसे पहले हम ध्यान दिलाना चाहेंगे कि इन लेखकों की कहानियों में लोक-भाषा, लोक-जीवन और ग्रामीण जीवन की सराहना करना उचित नहीं है। इसका सबसे पहला कारण तो यह है कि इनमें से ज़्यादातर या सभी लोग भारत के गाँवों में रहकर, पढ़-लिखकर विदेश के शहरों में जाकर बस गए हैं। इनका संबंध शायद ही कभी श्रम की संस्कृति से रहा हो, ऐसे में इस प्रकार के चित्रण की इनसे करना ज़्यादती होगी। इसी तरह, इनमें हिंदी कहानियों की तरह सामाजिक अस्मिता का मुद्दा उसी रूप में नहीं आता है। इनकी कहानियों में प्रकृति चित्रण के नाम पर खेत-खलिहान नहीं, बल्कि बाग-बगीचे और वाटर पार्क या ख़ूबसूरत पहाड़ आते हैं। इन कहानियों में उस संकर शहरी संस्कृति का चित्रण है, जो अंग्रेज़ी शिक्षा और भारतीय उच्च मध्यवर्ग के संस्कारों से निर्मित हुई है। संस्कृति के इस रूप का बदलता हुआ स्वरूप इन कहानीकारों की कहानियों में मिलता है। भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के निकलकर यह कहानीकार सीधे कथित उत्तर आधुनिक समाज और उसकी विसंगतियों में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं। उन्हें यह विसंगतियाँ कई बार भारतीय संस्कृति के मूल के विरोध में दिखने पर भी वे उसे खुलकर अभिव्यक्त नहीं करते हैं। इसे और बारीक नज़र से देखा जाए तो यह कहानीकार उत्तर-आधुनिक समाज में रहकर उसकी विसंगतियों को सापेक्षतावाद के नज़रिए से नहीं देखते हैं। इसकी सबसे बड़ी वजह है कि वे एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति की नज़रिए से देखना नहीं चाहते हैं। इसलिए वे हर एक संस्कृति को एक-दूसरे से प्रभावित होती संस्कृति नहीं, बल्कि आज़ाद संस्कृति के रूप में देखते हैं। यानी कि यह रचनाकार अपनी विश्वदृष्टि में अक्सर ठहरे हुए देखे जा सकते हैं। उनमें अगर कोई बदलाव हुआ भी होता है, तो इसके लिए पीढ़ियों का सफर तय करना होता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और राजनीति के समय में इन कहानियों में चित्रित ज़्यादातर देशी पात्रों के मानस में एनआरआई (प्रवासी भारतीय) का तमगा और भारतीय सभ्यता की मानवतावादी और संवेदनशीलता के प्रति गर्व, किन्तु भौतिकवाद के चपेट में न अपने मानस में बसे परम्परावाद का त्याग करना चाहने वाले और न भौतिक सुविधाओं की बलि देने के लिए तैयार पात्र हैं। इन कहानियों में स्त्री पात्रों में संवेदनशीलता पुरुष पात्रों के प्रति अधिक दिख सकती है, क्योंकि अधिकांश कहानियों में उन्हें भारतीय सभ्यता के वाहक के रूप में दिखाया गया है। ये स्त्रियाँ कभी इस ओढ़ा दी गई देशी संवेदनशीलता, वास्तव में सभी सहने का बहाना है, के प्रति विद्रोह का भाव रखती हैं, तो कभी पर्याय होने के कारण उसका शिकार हो जाती है। चौंकाने वाली बात है कि विदेशों में रहकर भी यह स्त्रियाँ संस्कृति की आड़ में होने वाले शोषण का पर्याय नहीं खोज पाई। स्त्री ही नहीं, सभी प्रकार के पात्रों के बारे में यही बात कही जा सकती है। अगर वे अपनी लड़ाई पूरी लड़ते हैं तो जीतते हैं और हारते हैं तो अपने परिवार के कारण, जो अंततः मजबूरी बनकर उभरते हैं। जी हाँ, यहाँ परिवार पैरे में बंधी बेड़ी की तरह देखे जा सकते हैं।

इन कहानियों का परिवेश बहुत ही कम जगहों पर भारतीय है, जो स्वाभाविक है। इसी तरह इन कहानियों में एक या दो ही भारतीय मूल के पात्र देखे जा सकते हैं, अधिकांश पात्र विदेशी ही हैं। इतना तो है, जितने भी भारतीय पात्र आते हैं, उनमें लिजलिजी संवेदना या ढुलमुल विचार संघर्ष देखा जा सकता है। ज़्यादातर पात्रों की बेचारगी या विदेशी माहौल में उनकी मजबूरियों का चित्रण है। समानता एवं तमाम भौतिक सुख-सुविधाओं को पा लेने का दावा करने वाले पाश्चात्य देशों में एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार और उसके सदस्य किस प्रकार अपने जीवन में द्वंद्वों का सामना कर रहे हैं। इन्हें ये कहानियाँ गहराई के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश करती हैं। सुमन घई की 'स्मृतियाँ' और 'उसने सच कहा था' जैसी कहानियाँ इसके उदाहरण हैं।

भारतीय व्यक्ति और पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति का द्वन्द्व भी इन कहानियों में देखने को मिलता है। अश्विनी गाँधी की कहानी 'पिता की पुकार' और डॉ.शैलजा सक्सेना की 'चाह' तथा 'पहचान एक शाम' कहानियाँ यही करती हुई देखी जा सकती हैं। असल में देखा जाए तो यह व्यक्ति बनाम संस्कृति का नहीं, बल्कि भौतिकतावाद बनाम भारतीय मूल्यों का संघर्ष भी है। अक्सर सामन्तवादी भारतीय पुरुष ने अभी त्यागा ही नहीं था, कि उसे स्वीकारने के लिए पूँजीवादी संस्कृति मिल गई। इसके बाद विदेशों में जाने के बाद उसे उत्तर-आधुनिक द्वन्द्व से अलग से गुज़रना पड़ा, ऐसे में ठीक वैसे ही पात्र कैनेड़ा के हिंदी लेखन में आना संभव नहीं था, जैसे भारतीय हिंदी कहानियों में

देखे जा सकते हैं। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि इन कहानियों में जिस भी प्रोफेशन से जुड़ी स्त्री पात्र आते हैं, लेकिन उन पर सांस्कृतिक दबाव अक्सर देखा जा सकता है, यह भारतीय और स्थानीय दोनों संस्कृतियों का दबाव है। जैसे, संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है, लेकिन विदेशों में बसे भारतीय इसे किराया बचाने के लिए इस्तेमाल करते हुए देखे जा सकते हैं। सुरेश कुमार की कहानी 'हिरासत के बाद' एक ऐसे परिवार की कहानी है, जहाँ इसे देखा जा सकता है। डॉ.शैलेजा की कहानी 'पहचान की एक शाम' में दो स्त्रियों की कहानी है। एक का पति कैनेडियन है, जो उसे भारतीय बनी देखना चाहता है, लेकिन वह उसे विचारों से आज़ाद स्त्री की तरह भी देखना चाहता है। दूसरी व्यक्ति का पति भारतीय मूल का है, लेकिन वह उसे पोस्ट-मॉडर्न स्त्री की तरह देखना पसंद करता है। भारतीय मूल के व्यक्ति को लगता है कि भारतीय परिधान और रहन-सहन पीछड़ेपन की निशानी है, लेकिन वह अपनी पत्नी को नौकरी भी करने भी नहीं देना चाहता है। उसे हाउस-वाइफ बनाए रखना चाहता है। भारतीय मूल का यह पात्र अपनी पत्नी को दिखावे के लिए आज़ादी देता है, अन्यथा वह अपनी मर्जी से घर के बाहर नहीं जा सकती है। वह उसे रोकता तो नहीं, लेकिन बच्चों और घर के काम का हवाला देकर घर में कैद रखता है। इससे उस स्त्री का दम घूँटने लगता है, लेकिन परंपराओं के नाम पर वह विकल्पहीन हो जाती है।

इसके विपरीत, सुरेश कुमार गोल की कहानी 'गलतफहमी' सांस्कृतिक विरोधाभासों के उभारा गया और उसे निपटाया किया गया है। इसका एक पात्र वीज़ा और अन्य तकनीकी कारणों से पिता के अंतिम संस्कार में नहीं आ पाता है। भारत में रहने वाले मामा जी और अन्य रिश्तेदार भी पत्र लिखकर ही शोक प्रकट करते हैं। वह इतना व्यस्त रहता है कि अपने किसी भी रिश्तेदार से संपर्क में नहीं रहता है। यह कहानी लेखक ने अपनी स्मृतियों के आधार पर लिखी है, लेकिन इसका सारा वातावरण भारतीय है, लेकिन मानसिकता विदेशी। असंवेदनशीलता का सिलसिला इतना आगे बढ़ता है कि जब मामा जी की मौत होती है, तो वह उसी शहर में रहकर उनकी अंतिम यात्रा पर नहीं जाता है।

संस्कृति के स्वरूप को समझने के लिए उसकी विकासशील प्रक्रिया और प्रभाव ग्रहण करने की क्षमता को भी समझना होता है। संस्कृति का बुनियादी अर्थ मानस का विकास होता है। यह मानस का विकास भी संस्कृति और सभ्यता का हिस्सा होता है। संस्कृति के भीतर रहते हुए निर्माण होने वाला द्वन्द्व कभी निराशावाद और पलायनवाद का कारण बनता है। सुमन घई की कहानी 'उसने

सच कहा था' और शैलजा सक्सेना की कहानी 'सार्त्र' इसी तरह के संघर्ष से गुज़रकर निराशावाद में खो जाते लोगों की कथा कहती है। 'सार्त्र' एक अफ्रीकन महिला की कहानी है, उसी की जुबानी है। वह महिला युगाण्डा-तंजानिया युद्ध के कारण शरणार्थी बनने पर मजबूर है। उसने इसी वजह से अपनी माँ को भी खो दिया है। असल में यह एक युद्धविरोध कहानी की तरह सामने आती है, जो तानाशाही शासन और उससे लड़ने वाली एक महिला की कहानी है। इस कहानी के स्त्री पात्र इतने सशक्त है कि उन्हें आज की भारतीय हिंदी कहानियों में बहुत कम देखा जाता है। यह कहानी अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक विमर्श का अहम हिस्सा अपने में समेटती है।

'उसने सच कहा था' आर्थिक मजबूरियों के चलते डिपार्टमेंटल स्टोर चलाने वाले व्यक्ति की कहानी है। उसका स्टोर रेड-लाइट एरिया में है। इस कहानी में वेश्याओं की मजबूरियों और शोषण की अनगिनत कहानियाँ बताई गई है, जो किसी भी संस्कृति का नहीं, बल्कि इंसानी घटिया फितरत का हिस्सा हैं। यह एक रिश्तों के तार-तार होने की कहानी है। इसी तरह अश्विनी गाँधी की कहानी 'मरना है एक बार' विमान दुर्घटना के बहाने इंसानियत के पतन को दिखाती है। इसमें आतंकवाद की समस्या को बड़े रिपोर्ट की तरह दिखाने की कोशिश की गई है। 'अनजाना सफ़र' नाम की कहानी एनआरआई लोगों की भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। यह हिंदी की नहीं, बल्कि हिंग्लिश कहानी कही जा सकती है, जो सर्वथा योग्य है। यह कहानी के अपने यथार्थ का हिस्सा है। यह कहानी परिवेश की भाषा में शब्दों के स्तर पर जुड़ती है और अंग्रेजी शब्दों का यथायोग्य प्रयोग करती है। इसी तरह 'दिले नादान' कहानी में अधूरे वाक्यों और अंग्रेज़ी की वाक्य संरचना के ज़रिए पात्रों के परिवेश और पृष्ठभूमि को बेहद रोचक ढंग से जीवन दिया गया है। इस कहानी में संवाद ज्यादा है, ब्यौरे कम।

विदेशों में पीढ़ियों से बसे दूसरे या तीसरी पीढ़ी के भारतीय मूल के कहानीकारों के बरअक्स पहली पीड़ी के कहानीकारों में फर्क भी साफ़ देखा जा सकता है। लेकिन यह फर्क अब धुँधला होता जा रहा है। कोई चाहे तो इसे मीडिया का बड़े पैमाने पर उपभोग या सोशिएल मीडिया क्रांति के प्रभाव के तौर पर देखा जा सकता है। अब हमारे लिए विदेशी संस्कृति की भीतर की चीज़ें जानना कोई बड़ी बात नहीं रही है। इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय कहानियों के साथ आँख-में-आँख मिलाने की हिंदी कहानीकारों की कोशिशों को इन कहानियों के ज़रिए देखा जा सकता है। वे जिस सच्चाई में जी रहे हैं, जिस तरह के लोगों से मिल रह हैं, उन्हें लिखने की एक बेहतरीन कोशिश के रूप में इन्हें हिंदी पाठकों में स्वीकार्यता मिलनी चाहिए। अततः भावनाएँ तो दुनिया में एक जैसी ही हैं,

और संस्कृति विकसनशील, और यदि संस्कृति विकसनशील नहीं तो उसे संस्कृति कहना मुश्किल है।

प्रोफ़ेसर गणेश बी. पवार,
हिंदी विभाग, भाषा एवं मानविकी संकाय,
कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी
Email: ganeshpawar@cuk.ac.in